सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

ओ३म्

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : १ अंक : १२ १ दिसम्बर २०१५ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० ₹ वार्षिक

महर्षि दयानन्दजी के प्रभाव से जोधपुर की (१०४ वर्ष) सबसे पुरानी गौशाला

गोपाष्टमी महोत्सव की प्रमुख झलकियां

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों का प्रचार-प्रसार व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

वर्ष : 1 अंक : 12

मंगसर संवत् २०७२

दिसम्बर २०१५

सृष्टि संवत् १९६०८५३११६

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

सम्पादक मण्डल :

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश, नोएडा

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. धर्मवीर, अजमेर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

विशेष : **महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश** में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं । उनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है ।

कार्यवाहक सम्पादक :

दुर्गादास 'वैदिक'

99293-82335

mail i.d.: info@dayanandsmritinyas.org.

www.dayanadsmritinyas.org.

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये

आजीवन शुल्क : 1100 रुपये (15 वर्ष)

पायें, पढ़ें, पचायें

	क्या	कहाँ
1	ईश्वर स्तुति-प्रार्थना	4
2	वेद : आओ अग्नि का....	5
3	वेद क्यो और क्या ?...	7
4	सृष्टि रचना के मूल तत्त्व...	10
5	गोदुग्धामृत.......	12
6	दयानन्द जीवन चरित्र......	15
7	महर्षि बलिदान एवं देह त्याग	19
8	आयुर्वेद : शीत ऋतु में ध्यान रखे	22
9	आर्यसमाज का इतिहास: बोद्ध मत	24
10	अंध विश्वासों से कौन..........	27
11	सूरसागर वार्षिक उत्सव	31
12	शिविर सूचना	32

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यस

बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646

IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

ईश्वर-स्तुति

प्रार्थना

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।।१७।।१।६।१६।५।।

व्याख्या- हे त्रैकाल्याबाध्येश्वर! ''अदितिर्द्यौः'' आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो । ''अदितिरन्तरिक्षम्'' अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सबके अधिष्ठाता हो । ''अदितिर्माता'' आप प्राप्तमोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाशरहित) सुख देने और अत्यन्त मान करने वाले हो । ''स पिता'' सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और ''स पुत्रः'' सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा और विद्वानों को नरकादि दु:खों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करने वाले हो । ''विश्वे देवा अदितिः'' सब देव=दिव्यगुणविश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करने वाले अविनाशी परमात्मा आप ही हैं । ''पञ्चजना अदितिः'' पाँच प्राण जो जगत् के जीवन हेतु वे भी आपके रचे और आप के भी नाम है ★ । ''जातमदितिः'' वही एक चेतन ब्रह्म सदा प्रादुर्भूत हैं, और कभी प्रादुर्भूत, कभी अप्रादुर्भूत (विनाशभूत) भी हो जाते हैं । ''अदितिर्जनित्वम्'' वे ही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् का (जनित्वम्) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं ★ ।।१।।

★ अर्थात् वे प्राण आदि । (सं.)

★ ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं, परन्तु यहां ईश्वराभिप्रेत से ही अर्थ किया, सो प्रमाण जानना चाहिये ।

(महर्षि)

-आर्याभिविनयः से

चतुर्वेदशतकम्

वही स्तुति योग्य है

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति । १।१।२। —ऋग्वेदशतकम्

शब्दार्थ-(**अग्निः**) परमेश्वर (पूर्वेभिः ऋषिभिः) प्राचीन ऋषियों से (उत) और (नूतनैः) नवीनों से (**ईड्यः**) स्तुति करने योग्य है । (**सः**) वह (**देवान्**) देवताओं को (**इह**) इस संसार में (**आ वक्षति**) प्राप्त करता है ।

भावार्थ-पूर्व कल्पों में जो वेदार्थ को जानने वाले महर्षि हो गये हैं और जो ब्रह्मचर्यादि साधनों से युक्त नवीन महापुरुष हैं, इन सबसे वह पूज्य परमात्मा ही स्तुति करने योग्य है । उस दयालु प्रभु ने ही संसार में दिव्य-शक्ति वाले, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और बिजली आदि देव और हमारे शरीरों में भी विद्या आदि सद्गुण, मन, नेत्र श्रोत्र, घ्राणादि देव प्राप्त किये हैं । उन देवों की सहायता से हम अपना लोक और परलोक सुधारते हुए, अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकते हैं ।

ईश-उपासना

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे । अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यꣳशिवो भव । ३६।२०। —यजुर्वेदशतकम् से

पदार्थ-(**हरसे**) पापों का हरने वाले (**शोचिषे**) पवित्र करने वाले और (**अर्चिषे**) अर्चना, पूजा, सत्कार करने योग्य आप परमात्मा को (**नमः ते नमः ते**) बारम्बार हमारा नमस्कार (**अस्तु**) हो। (**ते हेतयः**) आपके वज्र (**अस्मत् अन्यान्**) हमारे से भिन्न हमारे शत्रुओं (दूसरों) को (**तपन्तु**) तपाते रहें । (**पावकः**) पावन करने वाले आप जगदीश्वर (**अस्मभ्यम्**) हम सबके लिये (**शिवः भव**) कल्याणकारी होवें ।

भावार्थ- हे दयामय परमात्मन् ! आप अपने भक्तों के पापों और कष्टों को दूर करने वाले, अर्थात् पापों से बचाते हुये उनके अन्तःकरण को पवित्र और तेजस्वी बनाने वाले हैं । आप भक्तवत्सल भगवान् को हमारा प्रणाम है । हे दयामय जगदीश ! ऐसा समय कभी न आवे कि हम आपकी आज्ञा के विरुद्ध चलकर आपके दण्ड के भागी बनें । किन्तु हम सदा आपकी आज्ञा के

अनुकूल चलकर, आपकी कृपा के पात्र बनते हुए, सुख और कल्याण के भागी बनें ।

त्वमग्ने यज्ञानाꣳहोता विश्वेषाꣳहितः । देवेभिर्मानुषे जने । पू. १।१।१।२।

—सामवेद शतकम् से

शब्दार्थ-(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! आप (विश्वेषां यज्ञानाम्) ब्रह्मयज्ञादि सब यज्ञों के (होता) ग्रहण करने वाले स्वामी हैं। आप (देवेभिः) विद्वान् भक्तों से (मानुषे जने) मनुष्यवर्ग में (हितः) धारण किये जाते हैं।

भावार्थः- आप जगत्पिता सब यज्ञों के ग्रहण करने वाले, यज्ञों के स्वामी है, अर्थात् श्रद्धा से किये यज्ञ होम, तप, ब्रह्मचर्य, वेदपठन, सत्यभाषण, ईश्वर भक्ति आदि उत्तम-उत्तम काम आपको प्यारे हैं। मनुष्य-जन्म में ही यह उत्तम कर्म किये जा सकते हैं। इन श्रेष्ठ कर्मों द्वारा इस मनुष्य-जन्म में आप परमात्मा का यर्थाथज्ञान भी हो सकता है। पशु-पक्षी आदि अन्य योनियों में तो आहार, निद्रा, भय, रागद्वेषादि ही वर्तमान है, न इन योनियों में यज्ञादि उत्तम काम बन सकते हैं और न आपका ज्ञान ही हो सकता है।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्।१।१।२।

—अथर्ववेद शतकम् से

शब्दार्थ-(वाचस्पते) हे वेदवाणी के स्वामिन् देव! (देवेन मनसा सह) प्रकाश-स्वरूप और अनुग्रह वाली बुद्धि से युक्त आप (पुनः एहि) वाञ्छित फल देने के लिए बारम्बार हमारे समीप आवें (वसोः पते) हे धनपते! हमें इष्ट फल देकर (नि रमय) सदा रमण कराओ। आप जो फल देवें वह (मयि एव अस्तु) हमारे में बना रहे (मयि श्रुतम्) जो हम वेद, सच्छास्त्र पढ़ें, सुनें वे हमारे में बनें रहें।

भावार्थ- हे वाचस्पते! धनपते! आप हम सब पर कृपा करो। जो-जो हमें वांछित फल हैं उनका दान करो। हमारे हृदय में सदा अभिव्यक्त होकर हमें आनन्द में मग्न करो। जैसे कृपालु पिता अपने प्यारे बालक को वांछित फल-फूल देकर क्रीड़ा करता हुआ प्रसन्न रखता है। ऐसे ही आप हमें अभिलषित फल देकर, हमारी यह प्रार्थना अवश्य स्वीकार करें। जो वेद, शास्त्र और महात्माओं के सदुपदेशों को हम सुनें, वे कभी विस्मरण न हों।

वेद क्यों? और क्या?

-प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

संसार की वे जातियां और समुदाय जो सृष्टि-कर्त्ता की सत्ता में विश्वास करते हैं, उन सबका यह भी मानना है कि सृष्टि-कर्त्ता प्रभु करूणा सागर है, दयालु है, कृपालु है। सृष्टि की रचना कैसे हुई? क्यों हुई? कब हुई? किसके लिये सृष्टि रची गई? इन प्रश्नों का उत्तर भले ही सब न्यारा न्यारा दें और सृष्टि-रचयिता के स्वरूप के बारे में चाहे सबकी एक सी मान्यता न हो परन्तु, सारा आस्तिक जगत् इस विषय में एक मत है कि जगत् की रचना करने वाले ने जीवों के भले के लिए सब कुछ दिया है।

प्रभु ने क्या नहीं दिया?:-

किसी भी मत में आस्था रखने वाले आस्तिक से आप बात करके देख लीजिएये। सब एक स्वर से यह कहते हैं परमेश्वर ने मनुष्यों के सर्वांगीन कल्याण के लिए सब कुछ दिया हैं जल, वायु, पेड़, पौधे, वनस्पतियाँ, फल, फूल, अन्न, धन, धातु, सूर्य, चन्द्र अग्नि पवन....। सब कुछ जीवों के उपयोग प्रयोग के लिये दिया गया है। प्रभु का एक नियम बड़ा विचित्र है। मनुष्य-सृष्टि का नियम तो यह है कि आवश्यकता पहले होती है आविष्कार बाद में होता है परन्तु परमात्मा की सृष्टि का नियम इसके विपरीत है। प्रभु पहले आविष्कार करता है फिर आवश्यकता उत्पन्न होती है। आंखों से पहले सूर्य बनाया गया। प्यास से पहले जल बन चुका था। प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्व धरती बन चुकी थी। भूख से प्राणियों को चिल्लाना नहीं पड़ा था। अन्न, वानस्पितियां और फल, फूल पहले ही थे। वायु पहले से थी। श्वास लेने वाले बाद में जन्मे। बच्चे का जन्म होते ही माता के स्तनों में दूध बहने लगता है।

ज्ञान-चक्षु क्या नहीं दिया? :-

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि प्रभु ने मनुष्य को बुद्धि भी तो दी हैं। मनुष्य में **Instinct of Curiosity** जानने की जिज्ञासा भी तो सदा से है। क्या दयानिधि परमेश्वर ने मनुष्य को बुद्धि के लिए ज्ञान नहीं देना था? मनुष्य की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए भी सृष्टि रचना के समय अर्थात् आदि सृष्टि में ही ईश्वरीय ज्ञान का आविर्भाव होना चाहिए। इस सत्य को स्वीकार करने में ननुनच करना या हठ व दुराग्रह का परिचय देना अशोभनीय है। **ऐसी सोच मानव बुद्धि का तिरस्कार ही तो है।**

एक और पहलू से भी आप सोचिये। मनुष्य को परमेश्वर ने इतना कुछ दिया है कि हम प्रभु के दिये पदार्थों की गिनती भी नहीं कर सकते। बहुत कुछ देकर प्रभु ने बुद्धि भी दे दी। बुद्धि को ज्ञान चाहिए। अब आप सोचिये कि यह कहां का न्याय है कि परमात्मा जगत् के असंख्य पदार्थ देकर उनके उपयोग प्रयोग की विधि विधान मनुष्य को न देता। आप देखते हैं कि जब कोई कम्पनी एक नई मशीन बनाकर मार्कीट में लाती है तो मशीन की बिक्री के समय ग्राहक को Instruction book (प्रयोग विधि-पुस्तिका) भी साथ के

साथ ही दी जाती है। एक बार हमने एक मशीन ले ली। प्रयोग विधि लेना भूल गए। हमारे लिए तो बहुत बड़ा संकट खड़ा हो गया। हमें जो हानि उठानी पड़ी, यहाँ यदि उसका वर्णन करें तो पाठक हमारी बुद्धि पर हंसेंगे।

रचना को न मानना:-

जो लोग सृष्टि के आदि में ईश्वरीय ज्ञान के आर्विभाव को नहीं मानते वे भी दयालु कृपालु प्रभु की सर्वज्ञता का उपहास ही उड़ाते हैं। मित्रो ! रचना को तो मानना और इस रचना (प्रभु के काव्य को-ज्ञान को) न मानना यह भी घोर नास्तिकता है। जब भी कोई रेलगाड़ी चलाई जाती है तो साथ के साथ समय सारणी (Time table) भी छप जाता है। गाड़ी चलने के महीनों व वर्षों के बाद रेलवे के टाईम टेबल की घोषणा का कुछ अर्थ नहीं बनता।

सब मानते हैं:-

अनादि काल से हमारे ऋषि-मुनि और संसार के विचारक सुधारक यह मानते हए हैं कि परमदेव परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में चार ऋषियों की हृदय गुहा में (Cave like hearts of theseers) अपने नित्य अनादि ज्ञान वेद का प्रकाश किया। बाइबल व कुरान तक भी दबे स्वर में इस सत्य को स्वीकार करते हैं। ये प्रमाण हम आगे चलकर देंगे।

सर्वोत्कृष्ट ही जियेगा:-

डार्विन ने जगत् के सामने अपना विकास मत रखा। इस विकासवाद की मान्यता के अनुसार संसार में (Survival of the fittest)सर्वोत्कृष्ट ही जी सकता है या जीता है। हम यहाँ विकास मत और विकासवादियों की सर्वोत्कृष्ट के जीने की मान्यता पर कुछ न कहते हुए यह कहेंगे कि सारे संसार के आस्तिक व नास्तिक लोग भले ही वे कुछ भी मानते हैं, इस बात पर एक मत हैं कि वेद संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ है। वेद से पुरानी पुस्तक आज तक कहीं नहीं मिली। भारत में अंग्रेजी राज में सरकार द्वारा पोषित प्रचारित पश्चिमी विद्वानों ने वैदिक धर्म व दर्शन का अवमूल्यन किया, वेद मन्त्रों के अर्थों से अनर्थ किया, वैदिक विचार धारा की खिल्ली उड़ाई परन्तु, सरकार के इन सब वेतन भोगी स्कालरों को भी यह मानना व लिखना पड़ा कि वेद ही संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं ।

अब विचारशील सज्जनों से हम कहना चाहेंगे कि Survial of the fittest सर्वोत्कृष्ट ही जीता है कि विकासवादी मान्यता को यहां वेद पर भी लागू करें और **पूर्वाग्रह मुक्त होकर यह घोषणा करने का साहस करें कि सर्वोत्कृष्ट होने के कारण ही वेद आज तक सुरक्षित हैं।** वेद की रक्षा करने वाले तपस्वी विद्वानों ने वेद के एक एक मन्त्र एक एक अक्षर व एक एक मात्रा को कण्ठस्थ करके वेद की रक्षा की है ।

पं. गंगाप्रसादजी उपाध्याय का कथन है-इस दीर्घकालीन सृष्टि के इतिहास में सैकड़ों मत

मतान्तर और धर्मशास्त्र बने और बिगड़ गये । कराल काल के थपेड़ों से वेद का बचा रहना यह सिद्ध करता है कि कुदरत वेदों की रक्षा करती है। ''जैसे सैकड़ों तूफान जिन से बड़े-बड़े मनुष्य निर्मित दीपक बुझ जाते हैं, सूर्य को नहीं बुझा सकते, इसी प्रकार वेद भी हैं''। सृष्टि का इतिहास कुछ शताब्दियों का नहीं, करोड़ों वर्षों का है। इतने लम्बे काल में संसार में कितनी उथल पुथल हो चुकी है। संसार में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। वेद आज भी सुरक्षित है। यह तथ्य वेद की उपयोगिता व योग्यता को प्रमाणित करता है।

एक हास्यास्पद कथनः-

चार अक्षर पढ़कर कुछ लोग कई बार यह कहते सुने गये हैं कि आज इतने पुराने वेदों की बात करना ऐसा ही है जैसे वायुयान युग में बैलगाड़ी की बात करना। देहली में विज्ञान भवन में मुसलमानों के एक कार्यक्रम में एक मौलाना ने यह बात बड़े लच्छेदार शब्दों में बड़ा बल देकर कही तथा कुरान को ईश्वर का नवीनतम व अन्तिम विधान बताया। यह बात सुनने में तो बहुत बड़ी लगती है परन्तु, इसमें कोई सार नहीं है। यह तो एक Cheap opinion (सस्ता मत) है। केवल पुरानी होने के कारण से भी कोई वस्तु या पदार्थ अनुपयोगी या बेकार नहीं हो जाता। विज्ञान बताता है कि सूर्य पृथ्वी से भी पुराना है। जल के बिना क्या कोई जी सकता है? पवन के बिना संसार क्षण भर भी नहीं चल सकता। ये सब तो बैलगाड़ी के युग से भी पुराने हैं।

अपाहिज व बेसहारा गौधन की रक्षार्थ जोधपुर की प्राचीनतम महर्षि दयानन्द गौशाला,मण्डोर

—आर्यसमाज जोधपुर रातानाड़ा के अन्तर्गत

यह गौशाला जोधपुर की 104 वर्ष पुरानी गौशाला है इसमें गायों की देखभाल उचित ढंग से की जाती है आप भी अपना समय एवं दान देकर पुण्य के भागीदार बन सकते हैं । अतः आप द्वारा दिया गया दान 80जी के तहत छूट प्राप्त है । आप एवं अपने सहयोगियों से गौशाला में दान देकर 80जी की छूट प्राप्त कर लाभ प्राप्त कर पुण्य के भागीदार बन सकते हैं ।

U Co Bank A/c 05630110041192
मण्डोर ब्रांच
IFSC UCBA0000563

सचिव
दुर्गादास वैदिक

सृष्टि रचना के मूल तत्त्व :

जीवात्मा व उसका स्वरूप

आचार्य लक्ष्मीदत्त दीक्षित (अनादि तत्त्व दर्शन)

आत्मा देहादि संघात से भिन्न है- इसे सिद्ध करने के लिए हमने अब तक निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की-

(i) शरीर के जलाये जाने पर पाप के अभाव से

(ii) शरीर के जल जाने पर भी पाप-पुण्य के नाश न होने से

(iii) कृतहानि और अकृताभ्यागम दोष के आ जाने से भी (iv) षष्ठी विभिक्ति के व्यवहार से भी

अब उपरोक्त क्रम को आगे बढ़ाते हुए:-

(१) चक्षु और त्वक् इन्द्रियों के द्वारा एक अर्थ के ग्रहण से :-

प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय का ग्रहण और प्रतिसन्धान कर सकती है अन्य इन्द्रिय ग्राह्य विषय का नहीं। यदि इन्द्रियां ही ज्ञाता होती तो ऐसा कभी न होता क्योंकि और के देखे का स्मरण नहीं हो सकता । जो विभिन्न इन्द्रियों द्वारा गृहीत ज्ञानों का प्रतिसंधान करता है वह इनसे भिन्न आत्म तत्व है ।

(२) बाई आंख से देखे पदार्थ का दाई आंख से प्रत्यभिज्ञान होने से:-

यदि देह से भिन्न आत्मा को न माना जाये तो प्रत्याभिज्ञान हो ही नहीं सकता क्योंकि अन्य के देखे का अन्य को स्मरण नहीं हो सकता ।

(३) संघात के परार्थ होने से:-

समस्थ त्रिगुणात्मक जगत भोग्य है । उसकी उपयुक्तता व सफलता तभी है जब कोई उसका भोक्ता हो । अचेतन भोग्य जगत का कोई चेतन भोक्ता होना आवश्यक है । भोग्य स्वयं अपना भोक्ता नहीं हो सकता इसलिए प्रकृति के भोक्ता के रूप में जीवात्मा का अस्तित्व सिद्ध है ।

यह आत्मा सिद्ध होते हुए भी इन्द्रियों से दिखाई नहीं देता क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं है ।

(४) इन्द्रियों से आत्मा प्रत्यक्ष नहीं होता :-प्रत्यक्ष का करने वाला अपना ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं कर सकता । जैसे आंख सबको देखती है किन्तु अपने को नहीं। द्रष्टा, द्रष्टा ही रहता है, दृश्य नहीं होता ।

आत्मा का नित्यत्व का विवेचन :-

(१) जीवात्मा अनादि और अनन्त है:-

(i) ब्रह्म की भांति जीव भी अनादि और अनुत्पन्न है । वह स्वरूप से नित्य है ।

(ii)चेतन का जड से बनना संभव नहीं क्यों कि जड़ में चेतना न होने से उससे चेतन जीव नहीं बन सकता । यदि कहें कि परमात्मा ने अपने में से बना दिया तो परमात्मा स्वयं विकारी हो जायेगा ।

(iii) जीव ईश्वर का न अंश है न छाया । अंश होता है अवयवी का । किन्तु ईश्वर अखण्ड और

विभु है । इस लिए जीव और ईश्वर में अशांशी भाव नहीं घट सकता । छाया पड़ती है किसी पदार्थ की किसी दूरस्थ दूसरे पदार्थ में। ईश्वर से दूरस्थ कोई पदार्थ नहीं जिसमें ईश्वर की छाया पड़ सके । इसलिए प्रतिविम्बवाद से भी जीव की उत्पत्ति सम्भव नहीं।

(iv) कार्य-कारण सम्बन्ध से भी जीव का उत्पन्न होना नहीं बनता । प्रथम तो ईश्वर को कारण और जीव को उसका कार्य मानने से जीव के गुण-कर्म-स्वभाव ईश्वर के गुण-कर्म, स्वभाव के सदृश होने चाहिये, किन्तु ऐसा है नहीं ।

(v) ईश्वर सच्चिवानन्द है जबकि जीव केवल सच्चिर्त है । इसी प्रकार ईश्वर सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और निर्विकार है जबकि जीव अल्पशक्ति, अल्पज्ञ और विकारी है ।

(vi) दूसरे कारण कार्य से पहले होता है । इसलिये ईश्वर औ़र जीव दोनों का एक साथ होना नहीं बनता । इस प्रकार जीव को किसी भी रूप में निर्मित अथवा उत्पन्न होना मानना तर्क विरूद्ध है। फिर, जो बना है वह कभी नष्ट भी अवश्य होगा ।

(२) आत्मा तो अविनाशी है:-

जिसका आदि है उसका अन्त अवश्य है । ''जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:'' जो उत्पन्न होगा वह मरेगा भी अवश्य । किनतु आत्मा अमर है । ''न हन्यते हन्यमाने शरीरे (गीता) शरीर के नष्ट हो जाने पर भी वह बना रहता है । देह भस्म हो जाता है, जीव नहीं । (श्वेत १-९) जड़ (प्रकृति) और चेतन (जीव) एक शासक और दूसरा शासित दोनों ही अजन्मा है ।(कंठ १-२-१८) यह चेतन आत्मा न जन्मता है, न मरता है । (वृहदा. ४-३-८) में कहा है जब वह जीवात्मा पुरुष शरीर से युक्त होता है तब जन्मा हुआ कहा जाता है और जब शरीर से उत्क्रमण करता है तब मरा हुआ कहलाता है । शंकर भाष्य (२-३-१६) के अनुसार देह को छोड़कर जीव स्थानान्तर और शरीरान्तर को प्राप्त कर लेता है । पूर्व पूर्व जन्म में अनुष्ठित कर्मो के अनुसार विविध प्रकार के शरीरों को धारण करना जीवात्मा की अनादि और अनन्त जन्म कर्म फल परम्परा को सिद्ध करता है । जात मात्र बालक द्वारा हर्ष, भय, शोक की अभिव्यक्ति और आहार की ईच्छा तथा प्रयत्न को देख कर सहज ही उसके पूर्व जन्म के अभ्यास की प्रतीति होती है । यह जीवात्मा के अविनाशी होने और अविनाशी होने से उसके अनुत्पन्न होने का स्पष्ट प्रमाण है ।

आत्मा के नित्यत्व में एक अन्य हेतु प्रस्तुति करते हैं-

(३) सत (भाव) का अभाव नहीं होता ।

जिस प्रकार अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं, उसी प्रकार भाव का विनाश अथवा अभाव भी संभव नहीं। यदि आत्मा का अस्तित्व सिद्ध है तो असका अनादि और अनन्त होना स्वत: सिद्ध है। यदि ''हम है'' सत्य है तो 'हम थे' और 'हम होंगे' भी उतना ही सत्य है। जिस तर्क से 'हम है' उसी तर्क से 'हम थे' और 'हम होंगे' भी।

अब आगे जीवात्मा के परिमाण का विवेचन करेंगे ---------- क्रमश:

।।गोदुग्धामृत्।।

—पं. रामनारायण शास्त्री

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास अपने आश्रम के प्राङ्गण में अश्वत्थ वृक्ष की छाया में स्वाध्याय निरत है। स्वाध्याय के प्रसङ्ग में ही उनकी बुद्धि में एक प्रश्न आया कि दूध देने वाले पशुओं में सबसे अच्छा दूध किसका होता है? फिर खड़े होकर भ्रमण= चहलकदम करते हुए प्रश्न का हल खोजने= विचारने लगे। अजा, महिषी, गौ आदि अनेक दुधारू जानवरों के नाम स्मृतिपथ पर आते रहे साथ ही चिन्तन की धारा में उनके दूध के गुणधर्म भी; परन्तु चिरकाल तक विचार करने के बाद भी प्रश्न के सही उत्तर का निश्चय नहीं कर पाये। गुणधर्म पर विचार करते समय यह बात अवश्य मस्तिष्क में थी कि गाय का दूध सबसे अच्छा है पर सही निर्णय नहीं कर पा रहे थे। उसी समय ज्ञानवृद्ध समकालीन दो नाम विचारसरणि पर आ गये- देवव्रत भीष्म और योगेश्वर श्री कृष्ण।

अब इस बात पर विचार करने लगे कि प्रश्न का सही समाधान पाने के लिए प्रथम किस के पास चलें जिससे अपना प्रयास शीघ्र सफल हों। तभी योगिराज श्रीकृष्ण के गोपाल नाम के साथ ही उनकी घोषणा भी स्मृति पथ पर आ गई। घोषणा और गोपाल नाम के याद आने के साथ ही प्रसन्न होकर योगेश्वर वासुदेव श्रीकृष्ण के पास जाने की तैयारी में संलग्न हो गये।

योगिराज श्रीकृष्ण किसी कारण हस्तिनापुर जा रहे हैं; मार्ग में हस्तिनापुर से पूर्व महर्षि व्यास के आश्रम को देखकर विचारपूर्वक निश्चय करके कि ''शाम हो गई है अत: रात्रि को महर्षि की सेवा में रहकर उनका सानिध्य लाभ प्राप्त करें, प्रात: हस्तिनापुर पहुँचेंगे; रथ को मोड़कर आश्रम के मुख्यद्वार पर रोक दिया।

योगिराज कृष्ण के पास जाने की तैयारी में संलग्न महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास को मुख्य द्वार पर रथ रुकने की ध्वनि सुनाई दी तो वे कुटिया से बाहर निकल कर आये। आश्रम में योगेश्वर-वासुदेव कृष्ण को प्रवेश करते देख महर्षि व्यास की प्रसन्नता पराकाष्ठा पर थी और होती भी क्यों नहीं? जिनके पास जाने की तैयारी में संलग्न थे वह स्वयं आश्रम में उपस्थित हो गये। आश्रम के प्राङ्गण में पहुँचकर परस्पर अभिवादन करके वहीं अश्वत्थवृक्ष की छाया में शिला पट्ट पर बैठकर वार्तालाप करने लगे।

योगिराज कृष्ण— ऋषिवर! मैंने आकर आपके कार्य में विघ्न उपस्थित किया, ऐसा प्रतीत होता है आप किसी विशेष यात्रा की तैयारी कर रहे हैं?

महर्षि व्यास— वासुदेव! आपने विघ्न उपस्थित ही नहीं किया अपितु यात्रारूप बाधा को ही समाप्त कर दिया।

योगिराज— यह कैसे ऋषिवर?

महर्षि व्यास— मैं आपके पास आने की ही तैयारी में संलग्न था। प्रात: भगवान् सूर्य के साथ ही अपनी

यात्रा प्रारम्भ करनी थी।

योगिराज कृष्ण(खड़े होकर)— आदेश दीजिए ऋषिवर! मैं स्वयं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। ऐसा कौनसा अपरिहार्य कारण है जिससे आपने मेरे पास आने का निश्चय किया ?

महर्षि व्यास— "विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिंद पयोऽमृतं मधु" इस यजुष् के स्वाध्याय करते समय पय अमृत और मधु शब्दों पर विशेषकर पयः = दूध पर विचार क्रिया कि दूध किस पशु का सबसे अच्छा होता है ? लम्बे समय तक चिन्तन मनन करने के बाद भी प्रश्न अनुत्तरित रहा तब आपके पास आने का मानस बनाया।

योगिराज कृष्ण— मुनिश्रेष्ठ! इस प्रश्न के समाधान के लिए मेरे पास ही क्यों ? प्रश्न का हल जानने के लिए आपको किसी ज्ञानवृद्ध का नाम भी तो याद आया होगा ?

महर्षि व्यास— अवश्य गोपाल वासुदेव ! मुझे देवव्रत भीष्म का स्मरण आपसे प्रथम हुआ, परन्तु........।

योगिराज कृष्ण— गंगापुत्र भीष्म ज्ञानवृद्ध होने के साथ ही वयोवृद्ध और अनुभव वृद्ध भी हैं; फिर परन्तु कैसा ?

महर्षि व्यास— योगिराज ! मुझे गोपाल नाम के साथ ही आपकी यह घोषणा भी याद आ गई-

गावो मे अग्रतः सन्ति गावो में सन्ति पृष्ठतः।

गावो मे हृदयः सन्ति गवां मध्ये वसाम्यहम्।।

इस घोषणा के कारण मैंने आपके पास आने का निश्चय किया कि आपसे अधिक उपर्युक्त तर्क एवं शास्त्रसम्मत उत्तर मिल सकेगा।

योगिराज कृष्ण— बस, यही बात है। दूध भैंस (महिषी) का सबसे अच्छा होता है।

महर्षि व्यास— (कुछ असमञ्जस और चिन्तन की मुद्रा में योगेश्वर वासुदेव की ओर निहारते हुए) आपने शायद मेरे...............। (मध्य में ही)

योगिराज कृष्ण— ऋषिवर ! आपका प्रश्न यही था कि दूध किस चौपाये का अच्छा होता है ? तो मैं निवेदन कर रहा हूँ- महिषी का अच्छा होता है।

महर्षि व्यास किं कर्त्तव्यविमूढ़ होकर प्रश्न की मुद्रा में योगिराज कृष्ण की ओर देखते हैं।

योगिराज कृष्ण— ऋषिवर ! मेरी घोषणा तथा गोपाल नाम के कारण आपके मन में कोई पूर्वाग्रह तो नहीं है कि '''मैं गौ के दूध को अच्छा कहूँगा'' ? यदि ऐसा है तो आप दत्तावधानमनसा सुनिये— दूध भैंस का अच्छा होता है भैंस का अच्छा होता है भैंस का अच्छा होता है।

महर्षि व्यास व्यग्रमन से योगिराज गोपाल वासुदेव कृष्ण को निर्निमेष निरन्तर देख रहे हैं और

योगेश्वर कृष्ण कहते जा रहे हैं जैसे इसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए महर्षि व्यास के आश्रम में आये थे ।

योगिराज कृष्ण–ऋषिवर ! अब भी आप को सन्देह है तो यजुष के स्वाध्याय में प्रश्न उपस्थित हुआ है और मैं ऋग्वेद की ऋचा निवेदन कर रहा हूँ ।

माता रूद्राणं दुहिता वसूनां स्वसादित्यानायमृतस्य नाभिः ।

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।। **ऋग्वेद ८।१०१।१५**

मन्त्रार्थः– रुद्र नामक देवों की (ब्रह्मचारियों की) माता, वसुनामक देवों की (ब्रह्मचारियों की) बेटी, आदित्य नामक देवों की (ब्रह्मचारियों की) बहिन यह गाय अमृत का केन्द्र है। जन= मानवमात्र को कहा जा रहा है कि इस निरपराध गाय का वध मत करो।

इसलिए गाय के दूध को दूध नहीं अमृत कहते हैं ।

चिरकाल से चल रहे संवाद को सुनकर आश्रम में रहने वाले अन्य ऋषि मुनि तथा अध्येता कुमार प्राङ्गण में एकत्र होकर शान्त भाव से सावधान होकर सुन रहे हैं और प्रसन्नता पूर्वक योगिराज के साथ मिलकर कर रहे हैं ।

योगिराज कृष्ण व अन्य–गाय का दूध दूध नहीं अमृत होता है अमृत होता है अमृत होता है।

अपने प्रश्न का शास्त्र सम्मत समाधान पाकर पूर्ण प्रफुल्ल हृदय महर्षि व्यास योगिराज गोपाल कृष्ण को हार्दिक धन्यवाद देते हैं । फिर सभी सन्ध्यावन्दन की तैयारी में लग जाते हैं ।

–पं. रामनारायण शास्त्री (प्रवक्ता सं. वि.)
राजकीय महाविद्यालय, सिरोही
हविर्धानम् **A** 30 राजबाग
सूरसागर (राजस्थान)
342024

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र की महत्ता पर प्रसिद्ध लेखक देवेन्द्रबाबू द्वारा लिखित जीवन चरित्र से

भारत-भूमि के पश्चिम में मुम्बई गवर्नमेण्ट के अधीन उपद्वीप के आकार का एक प्रदेश है। इस प्रदेश का सौरदेश गुर्जर-भूमि के साथ सम्बन्ध है। इसके दो ओर कैम्बे और कच्छ उपसागर दो भुजाओं के समान विस्तृत हैं और इसके पैरों को अब अरब-सागर की अनन्त ऊर्मिमाला नित्य प्रक्षालित करती है।

पुराणादि ग्रन्थों में इस प्रदेश को सौराष्ट्र नाम से पुकारा गया है। अब यह काठियावाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। काठियावाड़ का थोड़ा-सा ही भाग अंग्रेजी राज्य के अधिकार में है और उसका शेष भाग देशीय राजाओं के शासन और नियन्त्रण में है और छोटे-बड़े खण्ड-राज्यों में विभक्त हैं, जिन पर बहुत-से छोटे-छोटे राजाओं के अधिकार हैं। इन्हीं खण्ड-राज्यों के अन्तर्गत एक मौरवी राज्य भी है। मौरवी का प्राचीन नाम मयूरध्वजपुरी था।

मौरवी राज्य भी कई विभागों में विभक्त है। उसके एक भाग का नाम टङ्कारा है। टङ्कारा एक बड़ा और विशेष ग्राम है। किसी समय वह अपने वाणिज्य-व्यापार की अधिकता, धनशालिता तथा अपने निवासियों की संख्या के कारण सारे काठियावाड़ में प्रसिद्ध था। सन् 1872 ई. में उसकी जनसंख्या ली गई थी तो 4903 हुई थी। सन् 1881 में उसकी जनसंख्या 5724 थी, पर सुनते हैं किसी समय उसके निवासियों की संख्या सात-आठ हजार थी। उक्त कारणों से टङ्कारा की गिनती नगरों में होती चली आती है। सन् 1918 ई. में विषूचितका रोग के भयंकर प्रकोप से बहुत-से लोग मर गये और उसकी जनसंख्या पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई।

टङ्कारा एक नगर है और वह कितने ही भागों वा मोहल्लों में विभक्त है। उसका जीवापुर मोहल्ला दरबारगढ़ वा राजमहल से थोड़ी ही दूर पश्चिम की ओर अवस्थित है। जब टङ्कारा दुर्ग की परिखा बनी हुई थी तब उसकी पश्चिम की परिखा को पार करना पड़ता था और थोड़ी ही दूर आगे चलकर जीवापुर में पहुँच जाया करते थे। इस समय परिखा टूट-फूटकर भूमि के समतल हो गई है, उसका केवल थोड़ा-सा भाग खड़ा हैं, जो टङ्कारा-दुर्ग को जीवापुर मोहल्ले से अलग करता है।

कर्शनजी त्रिवाड़ी- जिस समय की बात हम कर रहें है, उस समय जीवापुर मोहल्ले में कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी नाम के एक सामवेदी उदीच्य ब्राह्मण निवास करते थे। कर्शनजी उनका और लालाजी उनके पिता का नाम था। काठियावाड़ में यह प्रथा चली आती है कि लोग अपने नाम के साथ अपेन पिता का नाम जोड़कर बोलते हैं, इसी कारण हमने उन्हें कर्शनजी लालजी लिखा है। त्रिवाड़ी उनकी उपाधि थी। त्रिवाड़ी शब्द त्रिपाठी शब्द का अपभ्रंश है। इससे ज्ञात होता है कि कर्शनजी के पूर्वपुरुष वंशपरम्परा के अनुसार त्रिवेद के पाठ में प्रवृत्त रहते थे। उदीचय कहने से उत्तर दिशा वा उत्तर देश के व्यक्ति से प्रयोजन है। अन्हलवाड़ा क अधिपति मूल राज सोलंकी ने किसी विशेष कार्य के लिए उत्तरभारत के अनेक स्थानों से एक सहत्र शुद्धचरित्र और वेदवेदांग-परायण ब्राह्मणों को बुलाकर और उनकी यथोचित सेवा और सत्कार करके उन्हें गुजरात प्रदेश के नाना स्थानों में बसाया था। वहीं ब्राह्मणगण गुजरात और काठियावाड़ प्रदेश के

'उदीच्य-सहस्त्र' नाम से प्रसिद्ध हुए। कर्शनजी के त्रिवाड़ी-उपाधिधारी होने से ही विदित होता है कि उनके पूर्वपुरूष इन्हीं 'उदीच्य-सहस्त्र.' ब्राह्मणों में से थे।

<u>कर्शनजी के पूर्वपुरुषों का निवास स्थान</u> - अनुसन्धान द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि मूलराज ने जिन 'उदीच्य-सहस्त्र' ब्राह्मणों को बुलाया था, उनके भीतर जो सामवेदी त्रिवाड़ी ब्राह्मण थे, उन्हें मूलराज ने सिद्धपुर ग्राम देकर बसा दिया था। इससे ज्ञात होता है कि कर्शनजी के पूर्वज गुजरात प्रदेश में आने के पश्चात् अधिकारी हो गये थे। यद्यपि यह निर्णय नहीं हो सकता कि वे उत्तर भारत के किस स्थान से आये थे तथापि यह सिद्ध होता है कि दक्षिण भारत में पदार्पण करने के पश्चात् उन्होंने सबसे पहले सिद्धपुर को ही अपनी निवासभूमि बनाया था। यह भी निश्चय होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी के पूर्व-पुरुषों में से कोई व्यक्ति बाद में कच्छ राज्य के भुज नगर में आकर बस गये थे और उसके कुछ समय पश्चात् वे काठियावाड़ में सम्भवत: जामनगर में आये और फिर जामनगर के अन्तर्गत कोशिया ग्राम में आकर बस गये। सुना जाता है कि कर्शनजी के पिता लालजी ही किसी जाति-सम्बन्धी कार्य के अनुरोध से कोशिया ग्राम को छोड़कर टङ्कारा आ बसे थे, अतएव पिता के समय से ही टङ्कारा कर्शनज़ी की निवासीभूमि समझनी चाहिए। यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि कर्शनजी का घर टङ्कारा के जीवापुर मोहल्ले में था।

<u>जन्म ग्रहण</u>- कर्शनजी त्रिवाड़ी के इसी टङ्कारा के जीवापुर मोहल्ले घर में संवत् 1881 वा सन् 1825 ई. में एक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। यही पुत्र पीछे घर छोड़कर निकल गये और संन्यासाश्रम ग्रहण करके संसार में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुए। इससे पहले काठियावाड़ प्रदेश सिंहों के लिए ही प्रसिद्ध था। अब वह कर्शनजी के घर पुरुषसिंह को जन्म देकर गौरव के प्रोज्जवल मुकुट से मुकुटित हो गया। यह पुत्र कर्शनजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। नामकरण का समय आने पर कर्शनजी ने उनका नाम मूलजी रखा।

<u>कर्शनजी का वंश</u>- मूलजी को छोड़कर कर्शनजी के और भी दो पुत्र और दो कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। उन दोनों पुत्रों में से एक का नाम वल्लभजी था। दूसरे का न तो नाम ही ज्ञात हो सका और न उसके विषय में कोई और बात ही ज्ञात हो सकी। कोई - कोई कहते हैं कि संवत् 1918 के विषूचिका रोग में उस पुत्र की मृत्यु हो गई थी। दोनों कन्याओं में से एक कन्या छोटी आयु में ही मृत्यु का कवल हो गई थी। मूलजी वा दयानन्द के गृहावास के समय उनके सामने ही उसकी मृत्यु हुई थी। दयानन्द ने उसकी मृत्यु का वर्णन स्वरचित आत्मचरित में किया है। कर्शनजी का छोटा पुत्र वल्लभजी विवाह के दो मास पीछे ही मर गया था। अपनी बड़ी पुत्री प्रेमबाई का विवाह करने के अभिप्राय से गोंडाल नगर के पास के गुंदिमाडू नामक एक छोटे-से ग्राम से एक ब्राह्मणकुमार मंगलजी लीलारावल को कर्शनजी टङ्कारा ले-आये थे और उसे वहाँ ही बसा दिया था, फिर उसी के साथ प्रेमबाई का विवाह कर दिया था। इस समय कर्शनजी के वंश में इस कन्या के प्रपौत्र को छोड़कर और कोई जीवित नहीं है। इस प्रपौत्र का नाम प्रभाशंकर कल्याणजी रावल है, परन्तु वह साधारणत: पोपट रावल के नाम से जाना जाता हैं पोपट रावल इस समय तक टङ्कारा में कर्शनजी त्रिवाड़ी के घर में निवास करता है। मूलजी के संसारत्यागी होने और अन्य दोनों पुत्रों की मृत्यु हो जाने के

कारण कर्शनजी के वंश की रक्षा करने वाला उनका उत्तराधिकारी बनने वाला कोई नहीं रहा था, अतएव उन्होंने अपने जामाता मंगलजी को ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया था और अपनी भूमि, घर, धन, सम्पत्ति, लेन-देन सब कुछ उसे ही दे दिया था। इस प्रकार वह कर्शनजी की सारी सम्पत्ति का अधिकारी बन गया था। मंगलजी का पुत्र बोगा हुआ, बोगा का पुत्र कल्याण जी और कल्याण जी का पुत्र उपर्युक्त प्रभाशंकर वा पोपट रावल हुआ और उनमें से एक के पश्चात दूसरा कर्शनजी की सम्पत्ति का स्वामी होता रहा।

कर्शनजी का लेन-देन— कर्शनजी के परिवार में सांसारिक दृष्टि से किसी प्रकार की कमी वा क्लेश नहीं था, क्योंकि वे स्वयं धनशाली व्यक्ति थे। उनका लेन-देन का कारबार था, परन्तु यह कारबार परिमित धनराशि पर निर्भर नहीं था। पोपट रावल के घर में कर्शनजी के लेन-देन का बहीखाता विद्यमान है, उसके देखने से विदित हुआ कि वे एक समय में कई-कई सहस्र रूपया दूसरों को ऋण दे सकते थे। गुजरात काठियावाड़ में मेमन नाम की एक मुसलमान जाति है। मेमन लोग वाणिज्य-व्यापार करने में जगत् प्रसिद्ध हैं। पहले समय में टंङ्कारा में बहुत-से मेमन लोग बसते थे। उनमें से अधिकतर वाणिज्य-व्यापार ही करते थे और प्राय: नये वर्ष के आरम्भ में वे अपने व्यापार के लिए विदेशयात्रा किया करते थे और प्राय: कर्शनसजी त्रिवाड़ी से उसके लिए रूपया ऋण पर लिया करते थे तथा यथा समय विदेश से लौटकर कर्शनजी का रूपया चुका दिया करते थे। यह बात अब तक भी टङ्कारा के किसी-किसी पुराने मनुष्य के मुख से सुनी जा सकती हैं।

कर्शनजी केवल साहूकार महाजन ही नहीं थे, वे विस्तृत भू-सम्पत्ति के भी स्वामी थे। वे जामनगर के अर्न्गत उक्त कोशिया ग्राम के एक बड़े भाग के अधिकारी थे। जामनगर के अन्तर्गत हरियाना ग्राम में कर्शनजी की दो बहिनें दो ब्राह्मणों से विवाही थीं। उन बहिनों के पुत्र अर्थात् अपने भानजों को कर्शनजी ने कोशिया ग्राम की कुछ भूमि दान दी थी। अपने जामाता मंगलजी रावल को भी उन्होंने कोशिया ग्राम की कुछ भूमि दान कर दी थी और अपनी विधवा पुत्रवधू वल्लभ की स्त्री मोगाबाई के भरण-पोषण के लिए भी वहाँ की कुछ भूमि उसके नाम करा दी थी। इसके अतिरिक्त मेधपुर, जिरागढ़, धूरकोट प्रभृति ग्रामों में कर्शनजी के जो शिष्य थे, उनकी वृत्ति भी उन्होंने मोगीबाई को दे दी थी। इसके सिवाय कर्शनजी राज-पदारूढ़ व्यक्ति थे। सन् १८७३ ई. में जब दयानन्द कलकत्ता में थे तो उन्होंने प्रसङ्ग-वश बातों-बातों में श्रीयुत मन्मथनाथ चौधरी, बी.एल. महाशय से कहा था कि जो तुम्हारे कलेक्टर करते हैं, वही कार्य हमारे पिता किया करते थे। इसके अतिरिक्त दयानन्द ने स्वरचित आत्मचरित्र में भी कहा है कि वे जमादार थे और जमादार शब्द का अर्थ भी उन्होंने स्वयं ही यह किया है कि वे नगर के फौजदार और राजकर उगाहनेवाले दोनों ही थे। वस्तुत: वह शब्द जमादार नहीं अपितु जमेदार है। हमने इस बात की आलोचना विशेषरूप से दयानन्द जन्मस्थानादि-निर्णय नामक पुस्तक में की है। पिता की धनशालिता के सम्बन्ध में उन्होंने स्वलिखित आत्मचरित में और भी निदर्शन दिया है। जब घर से निकलकर मूलजी शैला योगी के पास पहुँचने के लिए यात्रा कर रहे थे तो उन्होंने उस समय की एक घटना का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है

कि ''मार्ग में एक ब्राह्मणभिक्षुकों के दल के साथ हमारा साक्षात् हुआ। वे हमारी ओर देखकर कहने लगे कि तुम जितना दान यहाँ करोगे परलोक में उतना ही तुम्हें लाभ होगा। हमारे पास जितना रूपया-पैसा था और हमारे देह पर जितना अलंकार था, वह उन्होंने ठग लिया। एक वैरागी ने एक मूत्ति रख रखी थी। मेरे हाथ में सोने की तीन अंगूठियाँ थीं। उसने मुझे चिढ़ाया कि 'सोने की अंगूठियों से वैराग्य की सिद्धि कैसे हो सकती है'? ऐसा कहकर उसने मेरी अंगूठियाँ मूर्ति के समर्पण करा लीं।'' जो मनुष्य सोने-चाँदी के अलंकारों से अलंकृत हो वह कभी भी निर्धन पिता का पुत्र नहीं हो सकता, जब वे शैला के कोटगङ्गा पहुँचे तो वहाँ की अवस्था के विषय में उन्होंने एक और घटना का आत्मचरित में उल्लेख किया है कि उस समय कि उस समय भी हम रेशमी किनारे की धोती पहने हुए थे। वहाँ के वैरागी उस पर प्राय: सदा हमारा ठट्टा किया करते थे, इसलिए हमने मूल्यवान् वस्त्र फेंक दिये और बाजार से साधारण वस्त्र क्रय करके पहनने लगे। काठियावाड़ की नीति-रीति और प्रथापद्धति से हमें जितनी अभिज्ञता है उसके आधार से हम कह सकते हैं कि वहाँ धनी लोगों की सन्तान के सिवाय और कोई साधारणत: रेशमी किनारे की धोती नहीं पहनता। अपने पिता के ऐश्वर्य के प्राचुर्य के विषय में वे एक और घटना का उल्लेख कर गये हैं। जब उनकी तीव्र मेधा, प्रगाढ़ विद्वत्ता और अन्य सद्गुणों का परिचय पाकर ओखी मठ के महन्त उनपर मोहित हो गये और महन्त-पद-प्राप्ति का प्रलोभन दिखाकर उनसे शिष्य हो जाने को कहा तो वे लिखते हैं कि मैंने उत्तर दिया कि यदि मैं धन-सम्पत्ति का इच्छुक होता तो पितृ-गृह को छोड़कर कभी न आता, क्योंकि मेरे पिता की सम्पत्ति इस मठ की सारी सम्पत्ति से किसी प्रकार कम नहीं है।

इसके अतिरिक्त मोगीबाई लोगों से प्राय: कहती रहती थी कि मेरे श्वशुर धनी और सुखी पुरुष थे। मोगीबाई की यह उक्ति उनके भतीजे बालशंकर भीमजीदेव के मुख से सुनी गई है। अस्तु, इन सब दृष्टान्तों से स्पष्टरूप से प्रामाणित होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी विपुल वित्तशाली मनुष्य थे।

इसके पश्चात् हम कर्शनजी के राजकर्मचारी होने के सम्बन्ध में एक दो बातें कहेंगे। शिवमूर्ति के प्रति अविश्वासी होकर जब शिवरात्रि की रात्रि में मूलजी जड़ेश्वर के मन्दिर से घर को चलने लगे तो कर्शनजी ने उनके साथ एक सिपाही भेजा था। घर से निकलने के पश्चात् जब कर्शनजी ने मूलजी को सिद्धपुर में पकड़ लिया था तब भी उनके साथ कई सिपाही थे। जब टङ्कारा से निकलकर मूलजी योगियों के अनुसन्धान में शैला की यात्रा कर रहे थे, अर्थात घर से निकलने के तीसरे दिन तो उन्हें सरकारी कर्चचारी के मुख से ज्ञात हुआ कि एक भागे हुए युवक को ढूँढने के उद्देश्य से कई अश्वारोही दलबद्ध होकर इधर-उधर घूम रहे हैं। पाठक! सिपाही व अश्वारोही सेवा किस प्रकार के मनुष्य के अधीन रहते हैं? सिपाही वा अश्वारोही गण किस प्रकार के मनुष्य की आज्ञा मानकर चलते हैं? स्पष्ट विदित होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी राजा के सम्मानपात्र थे वा राजकीय-पद-जनित सम्भ्रम से विभूषित थे। इस विषय में और भी प्रमाण हैं, परन्तु बाहुल्य-भय से हम उन्हें यहाँ नहीं लिखते। कर्शनजी त्रिवाड़ी के लेन-देन, जमींदारी और जमेदारी ने उन्हें टङ्कारा का एक सम्भ्रान्त और विशेष पुरूष बना दिया था, अत: ज्ञात होता है कि अपने पितृगृह में शिशु मूलजी सुख और शान्ति के साथ लालित-पालित हुए थे।

महर्षि दयानन्द के बलिदान व देह-त्याग के कुछ प्रेरक प्रसङ्ग

-प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महर्षि ने स्वयं आर्याभिविनय में लिखा है-"जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें।"

महर्षि ने इसी सुधासिन्धु आर्याभिविनय में लिखा है-"आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करें, उस आनन्द से हम लोगों को क्षणमात्र भी अलग न रखें।"

ईश्वर से इतना प्यार था ऋषि का। परमेश्वर के इस परम प्यारने ने लिखा है-"आप (स्वमुख) स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है।"

जिस योगेश्वर, ऋषि महर्षि के ऐसे उच्च आध्यात्मिक भाव हों, उसके एक वाक्य के आशय को ठीक-ठीक न समझकर यह शोर मचाना कि महर्षि ने समाधि का आनन्द त्याग दिया, बड़ा विषैला व भ्रामक विचार है। ऋषि के अन्तिम दिनों की दिनचर्या को पढ़िये। जोधपुर, शाहपुरा, उदयपुर, चित्तौड़ और उससे पहले भी जहाँ कहीं गये, वे सर्वत्र घण्टों समाधिस्थ होते थे। तभी तो हँसते-हँसते मृत्यु का आलिङ्गन किया। मौत उनसे डरी, दबी व भागी। वे तो मौत से न कभी पहले डरे और न महाप्रयाण के समय उन्हें शरीर के छोड़ने से किञ्चितमात्र् दु:ख हुआ। योगियों के जप, तप और ईश्वर विश्वास की परीक्षा मृत्यु के समय ही होती है और महर्षि दयानन्द इसमें खरे उतरे। उन्होंने उस समय ईश्वर को दु:ख भरे हृदय से यह न कहा कि हे प्रभो! मेरे पिता! तून मुझे क्यों छोड़ दिया।

यहाँ एक दु:खद घटना का उल्लेख कर दें। आज से कोई २१ वर्ष पूर्व डी.ए.वी. कॉलेज के एक पूर्व प्राचार्य श्रीराम शर्मा ने एक भली प्रकार से रचे गये षड्यन्त्र के अनुसार यह विषैला प्रचार किया कि महर्षि दयानन्द को विष नहीं दिया गया था। उनका बलिदान नहीं हुआ था। इस षड्यन्त्र के पीछे अँग्रेज के गुप्तचर रायबहादुर मूलराज के कई चेले थे। होशियारपुर के आचार्य विश्वबन्धु इस शरारत के पीछे थे। विश्वबन्धुजी ने एक और प्रिंसिपल से 'वेद में माँसाहार' विषय पर एक पुस्तक लिखवाई। यह पुस्तक श्री अमरसिंह के समझाने पर उक्त प्रिंसिपल ने न छपवाई। यह एक ऐसी शरारत थी जिसका उद्देश्य मात्र आर्यजाति के इतिहास को दूषित करना था। इस टोली को महर्षि दयानन्द से एक चिढ़ थी। महर्षि दयानन्द के बलिदान के सम्बन्ध में यह भ्रामक मिथ्या प्रचार करते हुए ये पेटपंथी जातिहत्यारे यह भूल गये कि कुछ ही वर्ष पूर्व प्रिंसिपल श्रीराम शर्मा ने शोलापुर से प्रिंसिपल बहादुरमल की ऋषि दयानन्द विषयक एक पुस्तक छपवाई थी और उसमें ऋषि के विषपान से बलिदान पर विस्तार से प्रकाश डाला गया था और इस टोली के गुरू आचार्य विश्वबन्धु ने भी अपनी एक पुस्तक 'वेद-सन्देश' में स्पष्ट लिखा है कि ऋषि का बलिदान विष दिये जाने से हुआ। पैसे के लोभ से अमरीकन प्रेरणा से रात-रात में ये लोग आर्यजाति का

इतिहास बिगाड़ने लग गये। ईश्वर की कृपा से इनकी यह कुचाल विफल रही।

महषि दयानन्द ने अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि ईशोपासना करने वाले के लिए पर्वत के समान दु:ख या दु:खरूपी पर्वत भी तृण के समान हो जाता है। ऋषिवर विषपान के कारण इतने लम्बे समय तक रुग्ण रहे परन्तु इस महादु:ख को, पीड़ा पर्वत को तृण के तुल्य भी महत्व न दिया। हँसते-हँसते शरीर को छोड़ दिया। सत्यनिष्ठा, सत्यभाषण, निर्भीकता व आत्मबल ही तो प्रभुभक्ति का फल है। यही योगियों के योगबल की परख की कसौटी है। इसी को ध्यान में रखते हुए कलकत्ता के दर्शनशास्त्र के एक प्रख्यात् विद्वान् डॉ. महेन्द्रनाथ ने महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व, कृतित्व व चरित्र का चित्र-चित्रण इन सुन्दर शब्दों में किया है-

"Strong is the epithet that can be applied in truth to Dayananda strong in intellect, strong in adventures, strong in heart and strong in organising forces. And his teachings through life and writings can be summed up in one word STRENGTH".

अर्थात् बलवान् ही एक ऐसा विशेषण या उपाधि है जो सच्चे अर्थों में ऋषि दयानन्द के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। वे मस्तिष्क से बलशाली थे। वे साहसिक कार्यों के करने में बलवान् थे। उनका हृदय बल पौरुष से भरपूर था और वे शक्तियों को जोड़ने व सङ्गठित करने में बलवान् थे और उनके जीवन (चरित) व उनके साहित्य द्वारा उनके सिद्धान्तों, शिक्षाओं को यदि एक ही शब्द में बताना हो तो वह शब्द है शक्ति।''

महर्षि दयानन्द जी को कुछ इतिहासवेत्ता भारत का लूथर कहकर पुकारा करते हैं। उपमा सर्वांश में नहीं ली जाती। लूथर महान् थे। यह सत्य है परन्तु एक तथ्य दोनों के व्यक्तित्व से बड़ा भेद दर्शाता है।

"Thuesday the 16th of November 1869 will go down to posterity as a historic day when the great shastrartha took place. It reminds one of the meetings at worms of Martin Luther and the learned representatives of the pope of Roma on this very point of Idolatory, with, of course, one difference. At worms Martin Luther was called by warrant to clear his position before the learned judges of christendom. Here swami Dayananda had gone on his own accord to face the lion in his den and to blend him to the kness."

अर्थात् १६ नवम्बर १८६९ मङ्गलवार का दिन, आने वाली पीढ़ियाँ एक ऐतिहासिक दिवस समझेंगी जबकि काशी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था। यह हमें वर्मस में पोप के विद्वान् प्रतिनिधियों के साथ इसी मूर्तिपूजा विषय पर मार्टिन लूथर की भेंट का स्मरण करवाता है, परन्तु एक भेद के साथ। वर्मस में मार्टिन लूथर को वारण्ट जारी करके बुलवाया गया ताकि वह ईसाई जगत् के माननीय विद्वान् न्यायाधीशों के सम्मुख अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण करे और यहाँ स्वामी दयानन्द स्वेच्छा से सिंह की माँद में गये और

उसके घुटने लगवाकर दिखा दिये।

ऋषि दयानन्द ने सत्य के लिए प्रत्येक सम्भव मूल्य चुकाया। लाहौर में उन्हें कहा गया कि प्रतिमा पूजन का खण्डन छोड़ो या यह बाग छोड़ो जहाँ डेरा लगा रखा है। ऋषि ने वाटिका छोड़ दी, परन्तु सत्य का सौदा नहीं किया। ब्राह्मसमाजियों ने आश्रय दिया। फिर उन्होंने कहा कि ईश्वरीय ज्ञान वेद को छोड़ो या हमारा मन्दिर छोड़ो। ऋषि ने प्रभु की अमर वाणी वेद के लिए ब्राह्म समाज का मन्दिर भी छोड़ दिया। डॉ. रहीम खाँ की कोठी में व्याख्यान देने लगे तो वहाँ इस्लाम की बुद्धिविरुद्ध बातों, अन्धविश्वासों की समीक्षा की तो किसी ने कहा,"क्या अब यहाँ से भी निकलने का विचार है?" कोई टिकने तो देता नहीं था। ऋषि का एक ही उत्तर था कि मैं सबका भला चाहता हूँ। जहाँ जाऊँगा, झाड़ू अवश्य लगाऊँगा।

आचार्य चमूपतिजी ने बहुत सुन्दर लिखा है, "सत्य महँगा था, कोठियाँ सस्ती। या कोठियाँ महँगी थीं, सत्य सस्ता। सौदा पटने में ही नहीं आता। स्थितप्रज्ञ साधु कैसी स्थितप्रज्ञता से इधर-उधर भटक रहा था।"

नित्यप्रति का यह भटकना क्या था? यह थी योगेश्वर दयानन्द की सत्य के लिए समाधि। इसके लिए महर्षि ने कौनसा कष्ट नहीं झेला? गिनती तो कोई करे कि कितनी बार ऋषि पर जानलेवा वार प्रहार किए गए। क्या कभी सच्चे प्रभुभक्त संन्यासी ने F.I.R.(पुलिस में रिपोर्ट लिखवाई) अंकित करवाई। एक भी तो दृष्टान्त कोई देवे? और अन्त में सद्धर्म के लिए, अनाचार, अन्याय, अन्ध-विश्वास, अज्ञान व दुराचार के उन्मूलन के लिए प्यारी जान भी वार दी।

जब कि बुझने लगा शहर अजमेर में,
देह दीपक दयानन्द ऋषिराज का।
पूर्ण इच्छा प्रभो! हो तुम्हारी यही,
बोलकर वाक्य वे मुस्कराने लगे।।

—कविरत्न 'प्रकाश'

सच्च तो बता तू कौन था?
पीर फ़ना के जाम को। दीपावली की शाम को।।
देह का दिया बुझा गया, सच्च तो बता तू कौन था?

—'सोजन' कवि

शीत ऋतु में
जरा ख्याल रखें, लेकिन क्यों?

—रसवैद्य डॉ. प्रेमदत्त पाण्डेय (निरोगधाम)

शीतकाल में जठराग्नि प्रबल रहती है, अतः भोजन में विलम्बन न करें। पौष्टिक आहार का सेवन करने में कमी न होने दें और आलस्य न करें।

समाधान- इसलिए कि शीतकाल में चूंकि जठराग्नि प्रबल रहती है अतः पेट में आहार ठीक वक्त पर पहुँचते रहना चाहिए वरना पेट की जो अग्नि आहार को पकाती-पचाती, वह आहार के अभाव में शरीर की धातुओं को उसी तरह जलाने लगेगी जिस तरह चूल्हे की आग पर रखी तपेली, दाल शाक न डालने पर जलते-जलते काली पड़ जाती है। भूख तभी मालूम देती है जकब जठराग्नि (पेट की आग) तेज हो जाती है। इन दिनों पाचन शक्ति भी ठीक काम करती है अतः पौष्टिक आहार अवश्य लेना चाहिए ताकि शरीर चुस्त-दुरुस्त और ताकतवर बना रह सके। आलस्य करेंगे तो न काम कर सकेंगे और न व्यायाम ही।

शीतकाल में, रात्रि में, शरीर को शीत से बचाना, दिन में धूप का सेवन करना, प्रातः काल वायु सेवन करना और रात को देर तक न जागना हितकारी होता है।

समाधान- शीतकाल की रातें बहुत ठण्डी होती है और गहरी नींद के लिए ठण्ड से बचना जरूरी होता है, दिन में धूप का सेवन सुखद होता है, प्रातः काल का वायुसेवन फेफड़ों के लिए लाभप्रद होता है। देर तक न जाग कर समय पर सो ज़ाने से शरीर को पर्याप्त विश्राम और पाचन संस्थान को पाचन क्रिया के लिए पर्याप्त अवसर मिल जाता हैं।

विवाहित स्त्री-पुरुषों को शीतकाल में बलवीर्यवर्द्धक एवं पौष्टिक पदार्थों से युक्त आहार एवं किसी अच्छे व निरापद वाजीकारक नुस्खे का सेवन अवश्य करना चाहिए ताकि वर्ष भर तक शरीर में शक्ति और सामर्थ्य बनी रहे।

प्रश्नः- क्या शीतकाल के अलावा अन्य ऋतुओं में पौष्टिक और वाजीकारक नुस्खे का प्रयोग नहीं करना चाहिए? यदि नहीं तो क्यों?

उत्तरः- यदि पाचन शक्ति बहुत अच्छी हो और शरीर की प्रकृति भी शीतल या समशीतोष्ण हो तो सवन कर सकते हैं अन्यथा नहीं क्योंकि पौष्टिक नुस्खे पचने में भारी और गुण में उष्ण प्रकृति के होते हैं अतः ग्रीष्मकाल या वर्षाकाल में इन नुस्खों का सेवन करना गुणकारी नहीं, कष्टदायक हो सकता है। शीतकाल में एक तो मौसम के असर से ठण्डक रहती है, दूसरे पाचन शक्ति प्रबल रहती है अतः पौष्टिक और वाजीकारक नुस्खों को सेवन करने के लिए वर्ष भर में शीतल काल ही श्रेष्ठ और निरापद समय होता है। शीतकाल में ऐसे नुस्खे का सेवन कर वर्ष भर तक उचित आहार-विहार रख कर नियम-संयम का पालन किया जाए तो शरीर पूरे वर्ष तक स्वस्थ, सबल और सक्षम बना रहेगा जैसे सीज़नल व्यापार करने

वाला व्यापारी सीज़न में इतनी कमाई कर लेता है कि वर्ष भर तक निर्वाह कर सके।

शरीर को शीत से बिल्कुल अछुता न रखें। थोड़ी बहुत शीत सहना स्वास्थ्य के लिए हितकारी होने से आवश्यक भी होता है लेकिन शीत लहर की तीखी हवा से बचाव करना भी जरूरी होता है। भोजन के बाद, स्नान से पहले और सोते समय ज्यादा शीत रहना उचित नहीं होता।

भोजन के बाद शीत सहने से पाचन-क्रिया विलम्ब से होती है या नहीं भी होती जिसे अपच होना कहते हैं। खट्टी डकारें आना अपच होने का सूचक होता है। स्नान से पहले ज्यादा शीत सहने पर शरीर में ठण्डक बढ़ जाएगी फिर स्नान करना उपयोगी नहीं रहेगा। सोते समय यदि ज्यादा शीत सहना पड़ें तो नींद नहीं आती और आती भी है तो कच्ची नींद आती है जो बार-बार खुल खुल जाती है जिससे सुबह उठने पर तबीअत में सुस्ती व गिरावट सी बनी रहती है।

सोते समय शरीर को शीत से बचाना जरूरी है फिर भी मुंह ढक कर सोना उचित नहीं होता। मुंह को खुला रख कर ही सोना चाहिए ताकि श्वास द्वारा प्रतिपल स्वच्छ वायु फेफड़ों में पहुँचती रहे।

यूं तो सदैव शीतल ताजे जल से ही स्नान करना चाहिए फिर भी शीतकाल में ठण्डा जल सहन न हो तो कुनकुने और ठण्ड छूट गरम जल से ही स्नान करना चाहिए। अत्यधिक गरम जल से स्नान करने से शरीर को 'स्नान के लाभ' नहीं मिलते।

स्नान करने का उद्देश्य शरीर का मैल दूर कर इसे तरोताजा और स्वच्छ करने के अलावा यह भी होता है कि शरीर में रात भर जो उष्णता बढ़ती है वह सन्तुलित हो जाए। ठण्डे जल से स्नान करने का, यह भी एक विशेक लाभप्रद कारण है। शरीर में अतिरिक्त गर्मी न बढ़े तो शरीर के आमाशय, पित्ताशय, पक्वाशय, मूत्राशय, मलाशय, शुक्राशय आदि अंग स्वस्थ बने रह सकते हैं।

आर्यसमाज का इतिहास

बौद्ध मत

-इन्द्र विद्यावाचस्पति

ईसा से लगभग ४०० वर्ष पूर्व बौद्ध-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध धर्म के जन्मदाता गौतम बुद्ध का जन्म एक हिन्दू राजवंश में हुआ था। सवभाव से ही वे विवेकशील और दयालु स्वभाव के थे। छोटी से छोटी बात उन पर असर डालती थी, और दूसरे का क्षुद्र से क्षुद्र दू:ख उनके हृदय पर आघात पहुँचाता था। उन्होंने संसार पर दृष्टि उठाई तो उसे दु:ख का घर पाया। किसी को शारीरिक और किसी को मानसिक दु:खों का शिकार देख कर वे चिन्तित हुए और अपने तथा संसार के दु:ख दूर करने के उपाय करने लगे। इन्हीं भावनाओं से प्रभावित होकर गौतम बुद्ध ने राजपाट छोड़ा, पुत्र-कलत्र का त्याग किया, और इस दु:खमय संसार की गहरी वेदनाओं पर विचार करना प्रारम्भ किया। महात्मा ने मनुष्यजाति के दु:खों के कारणों पर विचार किया तो उन्हें भान हुआ कि उसके कुछ ऐसे ही कारण है जो मनुष्यों के अपने व्यक्तिगत सामाजिक आचरणों से सम्बन्ध रखते हैं। जो-जो कारण महात्मा बुद्ध को दिखाई दिए, उनमें से मुख्य तीन थे। पहला यह कि मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करने के लिए पशुओं की हिंसा करते थे, और क्रूरता को बढ़ाते थे। दूसरा कारण यह था कि लोगों में झूठे जात-पात के अभिमान और भेद के भाव बढ़ गए थे, जो मनुष्यों की उन्नति को रोक रहे थे। तीसरा कारण यह था कि लोग भिन्न प्रकार के विश्वासों और विचार की बारीकियों पर बहुत अधिक ध्यान देते थे, और व्यक्तिगत आचरणों की उपेक्षा करते थे। पुराने वैदिक धर्म के आदर्श बिगड़ गए थे। समाज में कुरीतियों का जाल फैल गया था।

महात्मा बुद्ध ने इस बात को अनुभव किया कि मनुष्यों की दशा बिगड़ गई है। उनके जीवन में अनेक स्थानों पर ऐसी चर्चा आई है कि जहाँ उन्होंने शिष्यों को पुराने धर्मात्माओं के उपदेश मानने की शिक्षा दी। महात्मा बुद्ध ने जिस धर्म का प्रचार किया, वह कोई नया नहीं था। बौद्ध धर्म के विद्वान् टी. डब्ल्यू. रिस डेविड्स ने 'बुद्धिज़्म' नामक पुस्तक के दूसरे परिच्छेद में बुद्ध के चरित की घटनाएँ दे कर अन्त में लिखा है:

''मुझे आशा है कि ऊपर दिया हुआ वर्णन इस प्रचलित मिथ्या विचार को निवृत्त करने के लिए पर्याप्त होगा कि गौतम बुद्ध हिन्दू धर्म का शत्रु था, और यह सिद्ध करने के लिए भी पर्याप्त होाग कि उसने असमानता, अत्याचार और दम्भ का नाश करके अपने देशवासियों का धन्यवाद कमाया है। गौतम उत्पत्ति, वृद्धि, जीवन और मृत्यु में ठेठ हिन्दुस्तानी रहा। हिन्दुइज्म उस समय तक पैदा ही नहीं हुआ था। अपने सम्बन्ध में प्रचलित धर्म के साथ उसने कोई संग्राम नहीं किया। उसका उद्देश्य विशुद्ध प्रचलित आर्य धर्म को बनाने और मजबूत करने का था, नष्ट का नहीं।''

श्री आर. सी. दत्त बौद्धधर्म और बुद्धदेव के बारे में लिखते हैं:

''उसने कोई नया आविष्कार नहीं किया, उसने कोई नया ज्ञान प्राप्त नहीं किया।''

—एन्शंट इंडिया

दूसरे स्थान पर इसी पुस्तक में दत्त महाशय फिर लिखते हैं:

''यह कहना ऐतिहासिक दृष्टि से अशुद्ध होगा कि गौतम बुद्ध ने जान-बूझ कर कोई नया धर्म खड़ा करने का बीड़ा उठाया था। इससे उल्टा उसे अन्त तक विश्वास था कि वह धर्म के उस पुराने और शुद्ध स्वरूप की घोषणा दे रहा है जो पुराने हिन्दू ब्राह्मण, श्रमण और अन्यों में प्रचलित था, और पीछे से बिगड़ गया था।''

ऊपर दो विद्वानों की सम्मतियाँ दी गई हैं। बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन उन सम्मतियों की सर्वथा पुष्टि करता है। गौतम बुद्ध ने कर्त्तव्य धर्म पर बल दिया है, दार्शनिक विचारों को औरों के लिए छोड़ दिया है। जिन कर्त्तव्य धर्मों का बुद्धदेव ने उपदेश दिया है, वे कोई नए नहीं। यम, नियम और धर्म के मनूक्त लक्षणों की अधिक गहरी और क्रियात्मक व्याख्या द्वारा गौतम बुद्ध ने मनुष्य जाति को पुष्यात्मा और अधिक शुद्ध बनाने का यत्न किया था।

बौद्ध धर्म के कुछ सिद्धान्तों पर दृष्टि डालिए। बौद्ध लोग संसार को परिवर्तनशील मानते हैं, पुनर्जन्म को स्वीकार करते हैं। बौद्ध लोगों की वस्तुएँ वही हैं, केवल उनका श्रेणी-भेद जुदा है। भूत, इन्द्रिय, गुण, लिंग, संस्कार, कर्म आदि का श्रेणी-भेद भी समान है। वेदना स्कंध आदि का श्रेणी-भेद नया है। बहुत गहरे दार्शनिक सिद्धान्तों पर महात्मा बुद्ध चुप ही रहे। ईश्वर या सृष्टि-रचना आदि के सम्बन्ध में उनका जो व्यवहार था, वह नीचे लिखी दो घटनाओं से स्पष्ट हो जायेगा।

''जब आगन्तुक ने बुद्ध से पूछा कि संसार की रचना नित्य है अथवा अनित्य, तो उन्होंने कोई उत्तर न दिया क्योंकि आचार्य ने इस प्रश्न को कुछ उपयोगी नहीं समझा।''

(मद्धिम १.)

इसी प्रकार जब एक बार किसी शिष्य ने परमात्मा के बारे में पूछा तो आचार्य का उल्टा प्रश्न यह था कि क्या तू अपने आप को जान गया है। गौतम बुद्ध के समय प्रतीत होता है कि वेदों के बिल्कुल उल्टे अर्थ लिए जाते थे, इसलिए उन्होंने वेद का नाम नहीं लिया, कहीं-कहीं वेद का उपेक्षा से नाम लिया है परन्तु वह गीता के इस वाक्य के सदृश ही है-

''त्रैगुण्यविषयावेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।''

हे अर्जुन, वेद त्रिगुण विषय है, तू त्रैगुण्य से भी ऊपर उठ जा।

''यावानर्थ उदपाने सर्वत: संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु पुरुषस्य विजानत:।।''

जो चारों ओर पानी से भरा हुआ हो, उसमें एक चुल्लू भर पानी जो महत्व रखता है, ज्ञानी पुरुषों के लिए वेदों में उससे अधिक कुछ नहीं।

गीता को कोई नास्तिक या वेदनिन्दक नहीं कहता। गीता का तात्पर्य वेद की निन्दा में है भी नहीं, उसका तात्पर्य एक पूर्ण ज्ञानी के लिए शब्दमात्र की तुच्छता दिखाने में है। इसी प्रकार गौतम ने भी ईश्वर,

सृष्टि-रचना आदि गम्भीर विषयों को और ईश्वरीय ज्ञान के मसले को यह समझ कर निरुत्साहित किया कि लोग इनके झमेलों में पड़कर अपने जीवन का सुधार करना भूल जाते हैं। गौतम बुद्ध ने एक स्थान पर भी यह नहीं कहा कि ईश्वर नहीं है या वेद अप्रामाणिक हैं। उनके लिए तथागत का मनोभाव विरोध का नहीं, उपेक्षा का था।

पीछे से बुद्ध को नास्तिक माना गया, यह अन्य बौद्ध विद्वानों का ही दोष है। सम्प्रदाय की पुष्टि के लिए आचार्य के पीछे बुद्ध गुरुओं ने यह आवश्यक समझा कि बौद्ध धर्म को सर्वांग सम्पूर्ण बनाया जाय। उसके लिए कटी-छंटी हुई एक फिलासफी बनाई गई जिसमें ईश्वर का खंडन, वेद का खंडन आदि रख कर छोटे-छोटे भेदों पर बहुत अधिक बल दिया गया और समानताओं को बिल्कुल भुला दिया गया।

बुद्ध ने जीवन-सम्बन्धी जिन सुनहरे धर्मों का उपदेश दिया है, वह श्रौत उपदेशों से कुछ अधिक भिन्न नहीं है; भेद इतना ही है कि उनके लेबिल बदल दिये गए हैं, श्रेणी-विभाग में कुछ भेद आ गया है, शेष कुछ नहीं। हम नीचे कुछ सिद्धान्तों की तुलना करके बताते हैं। बौद्ध उपदेशकों के लिए बुद्ध के आठ मुख्य उपदेश ये हैं:

दूसरे का जीवन नष्ट न करना चाहिए। अहिंसा।
बिना दिये न लेना चाहिए। अस्तेय।
झूठ न बोलना चाहिए। सत्य।
मद्यपान न करना चाहिए।
अनुचित स्त्री-सम्बन्ध वर्जित है। ब्रह्मचर्य।
रात्रि को ऐसा भोजन न करना चाहिए जो विकार उत्पन्न करे।
माल्य या सुगन्ध का व्यवहार ठीक नहीं।
भूमि पर चटाई बिछा कर सोना चाहिए। अपरिग्रह।
इसी प्रकार बुद्ध ने दस पाप गिनाए है:-

(१) हिंसा, (२)चोरी, (३) व्यभिचार, (४)झूठ, (५) परनिन्दा, (६) शपथ, (७) व्यर्थवाद, (८) मन का खोट, (९) ईर्ष्या, (१०) अविश्वास।

मन की दस भूलें हैं जिन्हें निवृत्त करना चाहिए:

(१) सकाय दिट्थि। अपने आप को भूल जाना।
(२) विचिकिच्छा। सन्देह।
(३) काम।
(४) पतिद्य। घृणा।
(५) रूप राग। पार्थिव कामना।
(६) अरूप राग। स्वर्गीय कामना।

(शेष पृष्ट 30 पर)

अंगद चरण

खण्डन-मण्डन

-बिहारीलाल शास्त्री

अंध विश्वासों से कौन बचा सकता है ?

देश कितना ही धनवान बन जाये कितना ही विद्वान् हो जाये, परन्तु जब तक जनता में अन्धविश्वासों का अन्धकार है तब तक मानव स्वजनित कष्टों के फल भोगता रहेगा ।

दीनानगर पंजाब में एक अन्धविश्वासी पिता ने अपने 5 वर्ष के पुत्र की बलि देवी जी की मूर्ति के सामने चढ़ादी । इसी प्रकार की और कई बलिदानों की घटनायें पत्रों में छपी हैं ।

कई व्यक्ति इस भयंकर कांड में पकड़े गये हैं । उनको कड़े दण्ड भी मिलेंगे । परन्तु सब अधिक दण्ड के भागी तो वे धर्म गुरू पंडित, मुल्ला, पादरी होने चाहिये, जो अन्धविश्वासों का समर्थन इस वैज्ञानिक युग में भी करते हैं । सब ही मतवाले वास्तव में मतवाले होकर अन्धविश्वासों का पोषण करते हैं । यदि कहो कि साम्यवाद, मार्क्स की विचार धारा इन अन्धविश्वासों को दूर भगा देगी तो कुछ हद तक ठीक है, परन्तु वर्ग विद्वेष का अन्धविश्वास तो इससे भी अधिक भयंकर रहेगा । मनुष्य कभी भी शांति से न बैठ सकेगा हर वक्त क्रांति तलवार लिये तना रहेगा । क्योंकि सबकी बुद्धि और पुरुषार्थ एक सा नहीं हो सकता, अतः वर्ग मिट नहीं सकते । और वर्ग हीन समाज बनाने के लिए कम्युनिष्ट तलवार चलाता ही रहेगा । कम्युनिष्ट भी एकमत है और घोर उग्र अन्धविश्वासी ।

केवल दयानन्द की विचारधारा जो बुद्धिवाद के साथ भावनामय धर्म को लेकर चलती है ।

बलिदानों का कारण है भिन्न-भिन्न देवों पर विश्वास । और वैदिक धर्म में इन देवों के नाम हैं, पर इसका अस्तित्व कहीं नहीं है ।

श्री पं. सत्यव्रत सामश्रमी पक्के सनातन धर्मी और वेदों के प्रकांड पण्डित लिखते हैं:-

''तथैव विद्या पर पर्याय वेदाध्ययनहीना बाला । कल्पित देवस्वरूपादौ विश्वसन्त्येव परं स तथा देवस्वरूपप्रत्यक्ष दर्शिनो विद्वांसो वैदिका। अर्थात्- वेद ज्ञान विहीन बालक मूर्ख ही ऐसे देवताओं पर विश्वास करते हैं न कि वेदज्ञ विद्वान्।

ऐतरेयालोचन में इन्होंने पुराण कल्पित देवों पर खूब विचार करके सबको भौतिक पदार्थ ठहराया है। इनकी सम्पत्ति में सब देवता सृष्टि के पदार्थ हैं। पुराण वर्णित देवता खरगोश के सींग है। तब फिर वेदों में वरूण, इन्द्र, अग्नि, अश्वी ऋभ्र उषा ये क्या हैं ?

अध्यात्म में एक ईश्वर के नाम है, गुणों के कारण । जैसा कि शतपथ ब्राह्मण ने कहा है-

''एतस्यैव साविस्टविरेष उ हयेव सर्वेदेवा:।

(१४-४-२२-१२)

इस ईश्वर की ही यह सब व्याख्या है। वही सब देवरूप है। हिंगलाज कांगड़े आदि स्थानों में रहने वाली वा विन्ध्यांचन वासिनी देवी का देवों में कहीं पता नहीं। देवी दुर्गा क्या है यह जानने के लिए हमारा पुस्तक "चुने हुए फूल" पढ़ें पर संक्षिप्त में बता दें कि ऋग्वेद, अथर्ववेद के वागाम्भृणी सूक्त का उपबृंहण है, मारकण्डेय पुराण में लिखी दुर्गा सप्तशती। इस पुस्तक का नवदुर्गो में पाठ होता है।

वागामृणी देवी ही दुर्गादेवी है। चंडी है, रुद्राणी वह कहती है.............

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूना"

मैं राष्ट्र शक्ति हूँ आध्यात्मिक पक्ष में ईश्वर और भौतिक पक्ष में राष्ट्र की शक्ति। वसूनाम संगमनी वसुओं का सूर्यादि लोकों का संचालन करने वाली ईश्वरीय शक्ति भौतिक पक्ष में देश निवासियों का संगठन करने वाली शक्ति राष्ट्र के निवासियों की संघटित शक्ति यही दुर्गा है। पूरी दुर्गासप्तशती अलंकारमय है।

वेद से विमुख होकर आर्यों ने शरीरधारी देवी देवताओं की कल्पना करके उनके मन्दिर बना डाले। देवी के शक्ति पीठ स्थापित हुए। वहाँ बकरे, भैंसे और मनुष्यों के भी बलिदान होने लगे, और आज भी हो रहे हैं। राजस्थान में पर्वतीय प्रान्तों में वाममार्ग फैला हुआ है। जोगी बडुए, पंडित इस अज्ञान का मण्डन करते हैं, प्रचार करते हैं।

इस अन्धविश्वास का विंध्वन्स केवल आर्य समाज का प्रचार कर सकता है। और यदि इस अज्ञान को न मिटाया गया तो दीनानगर जैसे बलिदान बराबर होते रहेंगे।

दूसरी हृदय विदारक घटना भी पंजाब की ही है। किसी जैन युवती को हिस्टिरिया के दौरे पड़ते थे। घर वालों ने समझा कि इसे भूत सताते हैं। बस भुत उतारने वाले साधुओं को बुला दिया। साधुओं ने लोहे की गर्म शलाकों ने युवती को इतना मारा कि वह दम तोड़ बैठी, साधु पकड़े गये।

भूत प्रेतों को सनातन धर्मी, ईसाई, मुसलमान सब मानते हैं। इंजील तो भूतों से भरी पड़ी है। मुसलमानों की ज्यारतों पर भूत उतारे जाते हैं। केवल कम्युनिष्ट इस पर विश्वास नहीं करता, परन्तु मार्क्स आत्म सत्ता को भी स्वीकार नहीं करता। यह अनात्मवाद भी गलत है। केवल आर्य समाज आत्मा को नित्य मानते हुए भी पुनर्जन्म को मानता है, भूत योनि को नहीं। भूत प्रेत पीर औलिया आर्यसमाज के दूसरे समुल्लास में ऋषि दयानन्द लिखते हैं-'जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप-पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख दु:ख के फल भोगने के अर्थ जन्म-जन्मान्तर धारण करता है।'.........

अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थ विद्या के पढ़ने सुनते और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादिक मानसिक रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं।

स्वामी जी ने आगे लिखा है कि अज्ञानी लोग जब न्यौते स्थानों पर जाते हैं वे न्यौते स्थाने थाली आदि सजाकर सिर हिलाते हैं और अपने को देवी हनुमान भैरव बताकर चढ़ावे की मांग करते हैं इस पर स्वामी जी कहते हैं–

'परन्तु जो कोई बुद्धिमान उनकी भेंट पांच जूता डंडा व चपेटा लातें मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं।

इस पर अखिलानन्द ने लिखा है—

'हिन्दुओ ! दयानन्द हनुमान देवी भैरव इन प्रसिद्ध तीन देवताओं को कैसी-कैसी बुरी-बुरी गालियां दे रहा है।'

(सत्यार्थ प्रकाश आलोचन २रा समुल्लास)

यहाँ अखिलानन्द वाक् छल करके हिन्दुओं को भड़का रहा है। स्वामी जी उन धूर्त न्यौते स्यानों के विषय में कह रहे हैं जो ढ़ोंगी देवी हनुमान भैरव बने हुए हैं, पर अखिलानन्द असली हनुमान आदि के विषय में इस वाक्य का अर्थ लगा रहा है।

इससे स्पष्ट है कि पौराणिक पंडित इस ढोंग बाजी को सच समझते हैं। मूर्खों को, नीच कौमों, गंवारों में चलने वाली कुरीतियों अन्धविश्वासों का ये तथाकथित सनातन धर्मी पंडित समर्थन करते हैं।

इन सब बुरी बातों के समर्थक ये पौराणिक पंडित ही बलिदानों और भूत कांडों के जिम्मेदार हैं। अखिलानन्दजी भूत तंत्र मृग शीर्षक से योनि का समर्थन करते हुए अथर्ववेद के मंत्र का टुकड़ा पेश करते हैं—

'येषाँ पश्चात् प्रपदानि'

अर्थात् '**इनकी (भूतों की) एड़ी अगाड़ी को पैर पिछाड़ी होते हैं।**'

पूरा मन्त्र इस प्रकार है–

येषाँ पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरोमुखाः।
खलजाः शकधूमजाः उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का
अयाशवः। तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय

(अथर्व काण्ड ८ सू. ६-१५)

जिनके पाँव पीछे को एड़ी और मुख सामने को हैं, ऐसे लोग जो खलों की सन्तान हैं, मलिन शक धूम (गहरे धुंए) अज्ञान बुराई से पले हैं। जिनकी विषय वासनायें बड़ी हुई हैं। गतिशील हैं, ऐसे जनों को हे वेदों के विद्वानों अपने ज्ञान से नष्ट करो।

जनता में प्रसिद्ध है कि भूत के पाँव पीछे को होते हैं बस अखिलानन्द जी नाच उठे। मिल गये वेदों में

भूत प्रेत। वेदों को बदनाम करने के लिए लिख मारा अथर्वालोचन।

मन्त्र में मुहावरों का प्रयोग हुआ हैं।

जिनका मुख सामने हो अर्थात् मुहं पर कुछ कहै मीठी-मीठी बातें करें परन्तु पाँव पीछे को हों चाल उससे उलटी चलें। यहाँ प्रतिक्रियावादी उलटी चाल वाले कपटी खलों से बचाने को कहा गया है।

कई सूक्तों में रोग के कीटाणुओं का वर्णन है। वेद में 'क्रिमीन' 'किमीदिन:' शब्द इनके लिए आए हैं। किमि शब्द अंग्रेजी के 'जर्म्स' से कितना मिलता हुआ है। इन कीटाणुओं के लिए आया है कि 'ये सूर्य न लितिक्षन्ते' यह सूर्य को सहन नहीं कर सकते। धूप में मर जाते हैं। इस पर होना चाहिए वैज्ञानिक शोध। परन्तु ये दम्भी पौराणिक यहाँ भूत प्रेत देख रहे हैं। वेदों के विज्ञान को इन्होंने बिगाड़ कर रख दिया। शताब्दियों से फैलाये हुये इन अन्धविश्वासों को ऋषि दयानन्द की विचारधारा ही बचा सकती है। दीनानगर जैसे क्रूर बलिदान देश में न हों। जैन युवती की तरह और भारत देवियों की हत्या न होने देना है तो दयानन्द के मिशन का प्रचार करों।

बेखौफो बेखतर है दयानन्द का मिशन।
दुनियाँ की रह गुजर है दयानन्द का मिशन।

(शेष पृष्ट 26 का)

(७) सिलवत परमाशा। कार्यों पर आशा।

(८) मानो। अभिमान।

(९) उद्वच्च। औद्धत्य।

(१०) अविज्जा। अविद्या।

इसी प्रकार के सदुपदेश है जो मनुष्य-जीवन के सुधार के लिए दिये गए हैं। इनमें कोई नवीनता नहीं हैं। भेद है तो केवल श्रेणी-विभाग में।

गौतम बुद्ध का धर्म क्रियात्मक धर्म है। उसने अनुभव किया कि भारत की जनता बहुत गिर गई है, पुराने सदुपदेशों को भूल गई है। नया श्रेणी-विभाग करके महात्मा ने लोगों को जीवन-सुधार का उपाय बतलाया। वही पुरानी वैदिक सच्चाईयाँ नए ढ़ंग पर कह सुनाई, और इस बात को छिपाया भी नहीं। गौतम बुद्ध ने सत्य को आर्यसत्य और सुकर्मों को आर्यकर्म के नाम से निर्दिष्ट किया।

आर्य समाज सूरसागर जोधपुर का 61 वां वार्षिकोत्सव

दिनांक 15 से 18 नवम्बर 2015

हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी वार्षिकोत्सव मनाया गया लेकिन हमने पहले ही ठान लिया था कि इस वर्ष कुछ विशेष आयोजन होना चाहिए । वैसे तो इस बार हमने भारत के धुरंधर प्रख्यात प्रवक्ता आचार्य आर्य्य नरेशजी को हिमाचल से बुलाकर रोजाना नये-2 विषयों पर बोलने का आग्रह किया, जिसमें उन्होंने राजधर्म पर आज की राजनीति के संदर्भ में सटीक बिना किसी लाग लपेट के विचार प्रकट किये । भजनोपदेशक पं. भूपेन्द्रसिंहजी ने चिर परिचित भजनों का जोश के साथ प्रस्तुतीकरण किया व उनके ही सहयोगी पं. लेखराज शर्मा ने संडे हो या मंडे गीत प्रस्तुत कर सब को लोट-पोट कर दिया । पं. केशवदेव शर्मा की मधुर आवाज सब को मोहित करती रही । बिन बुलाये मेहमान स्वामी कृष्णानन्द नि. चामु, जयपुर ने वेदों में भरे पड़े विज्ञान के चमत्कारों के बारे में बतलाया व चल रहे अनुसंधान के बारे में जानकारी दी ।

प्रातः कालीन सुमधुर वेला में नित नये जोड़ों को यज्ञ में बैठा कर यज्ञ ब्रह्मा के रूप में पं. रामनारायण शास्त्री जोधपुर ने वेद विद्वान् होने का उत्तम परिचय दिया एवं अति उत्तम रीति से मंच संचालन किया । पं. विमल शास्त्री ने आर्य वीरों को प्रस्तावित राज्य स्तरीय शिक्षण प्रशिक्षण शिविर में भाग लेने हेतु प्रेरित किया । प्रथम दिन यज्ञ के पश्चात् ध्वजा रोहण श्री जयसिंह गहलोत पूर्व प्रधान के कर कमलों द्वारा किया गया व अंतिम दिवस कार्यक्रम के पश्चात् श्री सोमेन्द्रसिंह अधिष्ठाता एवं श्री कवीष आर्यवीर द्वारा ध्वजावरोहण का कार्य सम्पन्न हुआ ।

कार्यक्रम के बीच में भी कुछ समय निकालकर सुन्दर व प्रभावी आयोजन किये गये जिसमें गौ संवर्धन आश्रम गांव मोकलावास एवं चौखा में यज्ञ एवं भजनोपदेश की प्रस्तुती दी गई । तत्पश्चात् पडौस में ही श्री अचलसिंह सोलंकी की आयु 95 वर्ष के ''अमृत महोत्सव'' में यज्ञ एवं भजनों प्रवचनों का शानदार कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया ।

महिला सम्मेलन का आयोजन दि. 16-11-2015 को मध्यान्ह श्रीमती ज्योति पूर्व पार्षद की अध्यक्षता में आयोजित हुआ जिसमें मंजू प्रचार्या ने अपने विचार प्रकट किये । पं. भूपेन्द्रसिंह द्वारा भजनों की प्रस्तुतीकरण किया गया । श्रीमती दिव्या गहलोत ने मंच संचालन किया । कार्यक्रम काफी उत्साहवर्धक रहा ।

अंतिम दिवस के कार्यक्रम समापन पर हमने 80 लेमीनेटे 14 X 18 इन्च स्वतंत्रता सेनानियों के चित्रों सहित जिसमें सूरसागर आर्य समाज के संस्थापक श्री गोवर्धनदास सोलंकी का चित्र लगाकर भेंट की।

-नरसिंह सोलंकी

मंत्री, आर्यसमाज, सूरसागर

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास,जोधपुर

के तत्वावधान में

प्रान्तीय योग–व्यायाम प्रशिक्षण व व्यक्तित्व निर्माण शिविर

दिनांक 27 दिसम्बर 2015 से 3 जनवरी 2016 तक

शिविर उद्घाटन एवं ध्वजारोहण
दिनांक : 27 दिसम्बर 2015 दोपहर 3 बजे

समापन एवं भव्य व्यायाम प्रदर्शन
दिनांक : 3 जनवरी 2016, रविवार

स्थान : महर्षि दयानन्द स्मृति भवन, रातानाडा, जोधपुर

शिविर में युवक उन्नति के विशेष कार्यक्रम

आत्मरक्षा के लिए

जूडो-कराटे, लाठी, भाला आदि शस्त्र संचालक
संकट कालीन परिस्थिति में बचाव के तरीके

स्वास्थ्य रक्षा के लिए

योग, आसन, प्राणायाम, दण्ड बैठक, सूर्य नमस्कार
मलखम्भ, जिम्नास्टिक आदि

आत्मिक उन्नति के लिए

सुयोग्य शिक्षकों तथा विद्वानों द्वारा संध्या, ध्यान, यज्ञ, संगीत एवं बौद्धिक प्रशिक्षण

यदि माता-पिता (अभिभावक) चाहते हैं कि

उनके बच्चे आज्ञपालक, बड़ों का आदर करने वाले, संस्कारित व अनुशासित बनें । शारीरिक, मानसिक व आत्मिक रूप से पूर्ण स्वस्थ व मजबूत बनें, अपनी ईश्वर प्रदत्त योग्यताओं का पूर्ण रूपेण विकास करके स्वयं के, परिवार के, समाज तथा राष्ट्र के उत्थान में सहयोगी बने तो–

आप सभी अभिभावकों से पुरजोर अनुरोध है कि अधिकाधिक संख्या में बच्चों व युवाओं को इस शिविर में भेजकर परिवार व राष्ट्र निर्माण के पुनीत कार्य में हमारा सहयोग करें ।

शिविर की विशेषताएँ

1. प्रात: जागरण से रात्री शयन तक सुव्यस्थित एवं अनुशासित दिनचर्या ।
2. सम्पूर्ण प्रशिक्षण सुयोग्य एवं अनुभवी प्रशिक्षकों व विद्वानों द्वारा दिया जायेगा ।
3. ईश्वर, वेद, योग, जीवन उद्देश्य, आयुर्वेद, नशामुक्ति आदि पर परिचर्चा व प्रवचन

4. ईश्वर भक्ति, समाज सुधार, राष्ट्र निर्माण आदि विषयों पर परिचर्चा व प्रवचन ।
5. प्रतिदिन ईशोपासना (संध्या), हवन, भक्ति संगीत का आयोजन ।
6. शुद्ध एवं सात्विक भोजन तथा सुन्दर आवास की व्यवस्था ।
7. समापन समारोह पर व्यायाम प्रदर्शन व पुरस्कार वितरण का सार्वजनिक आयोजन ।
8. शिविर में स्वस्थ एवं चरित्रवान, धार्मिक जीवन निर्माण करना एक मात्र उद्देश्य ।

शिविर के आवश्यक नियम

1. परीक्षा, प्रमाण-पत्र, बौद्धिक पाठ्यक्रम एवं प्रान्तीय कोष के लिए प्रति शिविरार्थी प्रवेश शुल्क 400/- (चार सौ रूपये) देना अनिवार्य है ।
2. शिविरार्थियों के आवास, भोजन एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर की ओर से निःशुल्क की जायेगी ।
3. शिविरार्थी की कम से कम आयु 13-14 वर्ष तथा पूर्णरूपेण स्वस्थ हो ।
4. शिविरार्थी अपने साथ मौसम अनुकूल पहनने के कपड़े, कान तक की लाठी सफेद शर्ट, खाकी नेकर, सफेद कपड़े के पी.टी. शूज, सफेद मौजे, सफेद सैण्डो बनियान, दो नए फोटो, पैन, टॉर्च, तेल, व साबुन इत्यादि लावें ।
5. प्रत्येक शिविरार्थी को शिविर दिनचर्या व अनुशासन का पालन करना होगा अनुशासनहीनता करने पर शिविर से पृथक कर दिया जायेगा ।
6. शिविर में कीमती सामान, घड़ी, अंगूठी, सोने-चाँदी के आभूषण आदि तथ चल दूरभाष (मोबाईल) लाना पूर्णत: प्रतिबन्धित है अत: इन्हें न लावें ।
7. प्रत्येक शिविरार्थी को 27 दिसम्बर 2015 दोपहर 3.30 बजे तक शिविर स्थल पर पहुँचना है ।

आवश्यक निवेदन एवं अपील

इस विशाल प्रशिक्षण शिविर के प्रबन्धन, भोजन, आवास, विज्ञापन, मार्गव्यय, मानदेय आदि पर पर्याप्त व्यय होगा । अत: आप भी दानी महानुभावों एवं आर्यसमाजों से निवेदन है कि अपनी सहायता राशि नगद/ बैंक ड्राफ्ट/ चैक आदि '' **महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर** के पक्ष में देय हो । महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन, जोधपुर के पते पर भेजने की कृपा करें ।

विशेष : भामाशाह, दानी महानुभाव एक दिन का अथवा एक समय का भोजन, नाश्ता, घी, आटा, गेहूँ, चावल , चीनी, तेल , दाल , दूध आदि भी देकर सहयोग कर सकते हैं

आयोजक

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन एवं
जोधपुर जिले की समस्त आर्य समाजें

आयोजक समिति

1. विजयसिंह भाटी, प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान
2. आर्य किशनलाल गहलोत, मंत्री, महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन
3. आर्य जयसिंह पालड़ी, कोषाध्यक्ष, महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन
4. रामेश्वर जसमतिया, संरक्षक, आर्य वीर दल, जोधपुर
5. सत्यवीर आर्य, प्रान्तीय संचालक, आर्यवीर दल, राजस्थान
6. देवेन्द्र शास्त्री, कार्यकारी संचालक, आर्य वीर दल, राजस्थान
7. भवदेव शास्त्री, प्रान्तीय मंत्री, आर्य वीर दल, राजस्थान
8. अंकुश आर्य, सहमंत्री आर्य वीर दल, राजस्थान
9. रामनारायण शास्त्री, बौद्धिकाध्यक्ष, आर्य वीर दल, राजस्थान
10. गोविन्दप्रसाद आर्य, कोषाध्यक्ष, आर्य वीर दल, राजस्थान
11. विमल शास्त्री, प्रचार मंत्री आर्य वीर दल, राजस्थान
12. पं. केशवदेव आर्य, संभागीय संचालक, आर्य वीर दल, जोधपुर
13. महेश आर्य, जिला संचालक, आर्य वीर दल, जोधपुर
14. सुन्दर आर्य, जिला मंत्री, आर्य वीर दल, जोधपुर

वेदों की ओर लौटो

शिविर हेतु सम्पर्क सूत्र :

स्मृति भवन	आर्य किशनलाल गहलोत	विमल शास्त्री	भवदेव शास्त्री
0291-2516655	9829027481	9828585871	9001434484

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

गौ सेवकों को पुरुस्कार वितरण करते हुए

पाडांल में विराजमान अतिथिगण

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17 Date Of Posting 9,10-12-2015

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित ।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655